Shodhaamrit, Vol.-3; Issue-2 (April-June) 2026 : Page No.-165-169

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-2 (April-June) 2026
Page No- 165-169
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com
Author's :

1. गुरमीत
शोधार्थी, दर्शन शास्त्र विभाग.

2. डॉ. बबीता शर्मा
शोध निर्देशिका, असो. प्रो., दर्शन शास्त्र विभाग, क. गु. परि., गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

Corresponding Author :

गुरमीत
शोधार्थी, दर्शन शास्त्र विभाग.

आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन में परम तत्त्व – एक दार्शनिक अध्ययन

शोध सार - आचार्य रामानुजाचार्य के विशिष्टद्वैत वेदांत में परम तत्त्व कोई निर्गुण या निराकार सत्ता नहीं, बल्कि सगुण और सविशेष ब्रह्म है, जिसे 'नारायण' कहा गया है। रामानुज के मत में ब्रह्म अनंत कल्याण गुणों से युक्त हैं और समस्त दोषों से रहित हैं।

आचार्य रामानुज के दर्शन का मुख्य सिद्धांत 'शरीर-शरीरी भाव' है। रामानुज ने तीन नित्य सत्ताओं को स्वीकार किया है—चित् (जीवात्मा), अचित् (जड़ प्रकृति) और ईश्वर। इनमें 'अप्रथक्सिद्धि' संबंध है। संपूर्ण चित् और अचित् जगत ईश्वर का 'शरीर' है, और ईश्वर इसकी अंतर्यामी 'आत्मा' है। जिस प्रकार आत्मा शरीर के विकारों से प्रभावित नहीं होती है, उसी प्रकार ब्रह्म पर भी जगत के विकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चित् और अचित् रूपी विशेषणों से 'विशिष्ट' होने के कारण ही इस एक सत्ता को 'विशिष्टाद्वैत' कहा जाता है।

यह परम तत्त्व भक्तों के कल्याण के लिए पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चा नामक पाँच रूपों में प्रकट होता है। निष्कर्षतः, रामानुज का परम तत्त्व शुष्क बौद्धिकता का विषय न होकर भक्ति, शरणागति और सायुज्य मोक्ष का परम आधार है।

मुख्य शब्द : विशिष्टाद्वैत, परम तत्त्व, ब्रह्म, तत्त्वत्रय, शरीर-शरीरी भाव, अपृथक्सिद्धि।

प्रस्तावना : भारतीय दार्शनिक परंपरा में वेदांत दर्शन का स्थान सर्वोपरि है। वेदान्त परंपरा में उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद गीता का महत्वपूर्ण स्थान है। इस परंपरा ने जीव, जगत और ईश्वर में क्या संबंध है इसे समझने के लिए कई महत्वपूर्ण सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है। आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने 'अद्वैत वेदांत' के माध्यम से 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' और माया के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसमें जगत को केवल एक व्यावहारिक सत्य माना गया। इसके विपरीत 11वीं-12वीं शताब्दी में भारतीय दर्शन के इतिहास में रामानुजाचार्य का आगमन हुआ। उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय करते हुए एक नए दार्शनिक दृष्टिकोण को जन्म दिया, जिसे 'विशिष्टाद्वैत वेदांत' कहा

जाता है।

आचार्य रामानुज ने शंकराचार्य के निर्गुण और निराकार ब्रह्म के सिद्धांत का खंडन किया और सगुण, सविशेष ब्रह्म की स्थापना की। उनका दर्शन केवल एक तार्किक विमर्श नहीं है, बल्कि इसमें दक्षिण के आलवार संतों की गहरी भक्ति भावना और प्रस्थानत्रयी के दार्शनिक चिंतन का समन्वय है। रामानुज के मत में जीवात्मा और भौतिक संसार मिथ्या या माया नहीं हैं, बल्कि ये दोनों परम तत्त्व यानि ईश्वर के ही वास्तविक अंग हैं। उन्होंने प्रतिपादित किया कि भक्ति और प्रपत्ति के माध्यम से ही जीव जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पा सकता है।

विशिष्टाद्वैत का अर्थ और परिभाषा - 'विशिष्टाद्वैत' शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है- विशिष्ट + अद्वैत। इसका शाब्दिक अर्थ है- "विशिष्टताओं से युक्त अद्वैत"। अर्थात तत्व तो एक ही है, लेकिन वह अनेक विशेषताओं या गुणों से विशिष्ट है। अंतिम सत्य केवल एक ही है,जिसे उपनिषदों में 'ब्रह्म' और भक्ति में 'ईश्वर' कहा गया है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी दूसरी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। यद्यपि परम तत्त्व यानि ब्रह्म एक ही है,परंतु वह निर्गुण या निर्विशेष नहीं है। इसमें हमेशा दो विशेषण विद्यमान होते है-चित् या जीवात्माएं और अचित् या जड़ प्रकृति।

परम तत्त्व (ईश्वर) का स्वरूप और सगुण ब्रह्म की अवधारणा - आचार्य रामानुज के दर्शन में ईश्वर (ब्रह्म) ही एकमात्र परम तत्त्व है, जो स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान है। आदि शंकराचार्य जहाँ ब्रह्म को निर्गुण, निराकार और निर्विशेष मानते हैं, वहीं रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म अनिवार्य रूप से सगुण, सविशेष और सकल कल्याण गुणों का भंडार है। विशिष्टाद्वैत में ईश्वर को 'श्रीमन् नारायण' या 'विष्णु' कहा गया है। वे समस्त दोषों से रहित और अनंत दिव्य गुणों से युक्त हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद के संदर्भ में ब्रह्म के स्वरूप को समझाते हुए रामानुज कहते हैं कि -

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान्त्सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥[1]

अर्थात् ब्रह्म सत्य स्वरुप, ज्ञान स्वरुप और अनंत (देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से मुक्त) है। जो उसे बुद्धि रुपी गुहा में स्थित जानता है, वह उस सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ समस्त कल्याणकारी भोगों को प्राप्त करता है।

अनंत कल्याणगुण - आचार्य रामानुज के अनुसार ईश्वर केवल ज्ञान स्वरूप ही नहीं है, बल्कि वह 'ज्ञाता' भी है। उनमें हेय गुणों अर्थात् राग,द्वेष,सुख-दुख,क्षुधा पिपासा,छेदन भेदन आदि प्रकृतिजन्य गुणों का अभाव है। मुख्य रूप से ईश्वर छह दिव्य गुणों (षड्गुण) से संपन्न हैं- ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज।

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥[2]

अर्थात् ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—ये सभी गुण समस्त प्राकृतिक दोषों या हेय गुणों से रहित होकर जिस परम सत्ता में रहते हैं, उसी को 'भगवान' शब्द से अभिहित किया जाता है। उपनिषद् अभिहित परमसत्ता के लिए सत्यसंकल्प एवं अपहतपाप्मत्व को भी रामानुज ब्रह्म का गुण ही मानते हैं। इन गुणों को विशिष्टाद्वैत परम्परा में गुणाष्टक के नाम से जाना जाता है।

नियामक, आधार और शेषी के रूप में ईश्वर - विशिष्टाद्वैत में 'तत्वत्रय' (चित्, अचित्, और ईश्वर) का सिद्धांत है। ईश्वर अंतर्यामी रूप से 'चित्' (जीवात्मा) और 'अचित्' (जड़ प्रकृति) दोनों का नियमन करता है। इन तीनों के बीच शरीर-शरीरी संबंध (अपृथक्सिद्धि संबंध) है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर अपनी आत्मा पर आश्रित रहता है परंतु आत्मा से अलग नहीं हो सकता, ठीक वैसे ही जीव और जगत ईश्वर पर आश्रित हैं। उनका अपना सत्य अस्तित्व है, लेकिन वे ईश्वर के ही अंग हैं। जीव और जगत ईश्वर के शरीर हैं और ईश्वर उनकी आत्मा (शरीरी) है।

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।

य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥[3]

अर्थात् जो जीवात्मा के भीतर रहता हुआ भी उससे पृथक है, जिसे जीवात्मा स्वयं नहीं जानता, जिसका जीवात्मा ही शरीर है और जो भीतर रहकर जीवात्मा को संचालित (नियमन) करता है। वही तुम्हारा अंतर्यामी, अविनाशी अमृत स्वरूप ईश्वर है।

ईश्वर के पाँच रूपों में स्थिति - सृष्टि के संचालन के लिए और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए ईश्वर स्वयं को पाँच रूपों में अभिव्यक्त करते हैं-

1. पर - बैकुंठ धाम में निवास करने वाला चतुर्भुज नारायण रूप, जो नित्य और मुक्त आत्माओं द्वारा सेव्य है।
2. व्यूह- सृष्टि निर्माण, स्थिति और संहार के लिए ईश्वर चार रूपों में प्रकट होते हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।
3. विभव - धर्म की स्थापना के लिए समय-समय पर पृथ्वी पर होने वाले अवतार, जैसे—श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि।
4. अंतर्यामी - प्रत्येक जीव के हृदय में साक्षी रूप में निवास करने वाला सूक्ष्म रूप
5. अर्चा - मंदिरों और घरों में स्थापित पूजनीय मूर्तियाँ, जिनमें ईश्वर भक्तों के प्रेम वश साक्षात् निवास करते हैं।

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥[4]

अर्थात् हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं अपने साकार रूप को प्रकट (सृजन) करता हूँ।

निमित्त और उपादान कारण - वेदांत दर्शन में सृष्टि के निर्माण के कारणों पर गंभीर चर्चा है। रामानुज के अनुसार ईश्वर संसार का निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी है। प्रलयकाल में जीव और प्रकृति अति सूक्ष्म रूप में ईश्वर में ही लीन रहते है और सृष्टि काल में नाम-रूप के साथ स्थूल रूप में अभिव्यक्त होते हैं ।

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत॥[5]

अर्थात् हे सोम्य! सृष्टि के प्रारंभ में यह जगत केवल 'सत्' (ब्रह्म) रूप ही था, जो एक और अद्वितीय था। उस ब्रह्म ने संकल्प किया कि 'मैं एक से बहुत हो जाऊँ' और तब उसने तेज (सृष्टि) की रचना की।

करुणा, वात्सल्य और मोक्षदाता - रामानुज के ईश्वर केवल एक निर्लिप्त शासक नहीं हैं, बल्कि वे करुणा और वात्सल्य के सागर हैं। वे जीवों के कर्मों के अनुसार फल तो देते हैं, परंतु जब कोई जीव पूर्ण रूप से उनकी शरण में आ जाता है, तो वे अपने अनुग्रह से उसके सभी पापों को मिटा कर उसे परमपद (मोक्ष) प्रदान करते हैं।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामी मा शुचः॥[6]

अर्थात् (गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं) सभी धर्मों (आश्रयों) को छोड़कर तुम केवल मेरी एक की शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।

चित् – रामानुज के अनुसार 'चित्' का अर्थ चेतन तत्व अर्थात जीवात्मा से है। चित् एक नित्य, वास्तविक और चेतन सत्ता है, जो संख्या में अनेक हैं और अणु परिमाण हैं। अद्वैत वेदांत जहाँ जीव को केवल अविद्या के कारण उत्पन्न एक आभास मानता है, वहीं विशिष्टाद्वैत में जीव का अपना स्वतंत्र और वास्तविक अस्तित्व स्वीकार किया गया है, जो मोक्ष की अवस्था में भी बना रहता है। रामानुज के दर्शन में चित् केवल जड़ प्रकृति का दृष्टा नहीं है। उसमें मुख्य रूप से तीन लक्षण पाए जाते हैं- ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता । आचार्य शंकर ने 'अहंकार' को अंतःकरण का धर्म स्वीकार किया है, जबकि आचार्य रामानुज ने 'अहम्' को आत्मा का ही मूल स्वरुप स्वीकार किया है।

ज्ञोऽत एव।
यथा प्रकाशस्वरुपस्यैव मण्यादेः प्रभा धर्मो भवति, तथा ज्ञानस्वरुपस्यैवात्मनो

ज्ञानं धर्मो भवति॥[7]

अर्थात् आत्मा स्वभाव से 'ज्ञ' (ज्ञाता) है। जिस प्रकार प्रकाश स्वरूप मणि या दीपक की 'प्रभा' एक धर्म होती है, उसी प्रकार ज्ञान स्वरुप आत्मा का 'ज्ञान' ही उसका मुख्य लक्षण है।

चित् के स्वरुप को समझने के लिए रामानुज ने 'धर्मभूत ज्ञान' की एक अत्यंत विलक्षण अवधारणा दी है। उनके अनुसार आत्मा के दो रूप हैं- स्वरुप भूत ज्ञान, धर्मभूत ज्ञान।

जीव में कर्मों के कारण यह ज्ञान संकुचित हो जाता है, और मोक्ष की अवस्था में यह अनंत रुप से फैल जाता है। क्षर (नाशवान शरीर वाले बद्ध जीव) और अक्षर (अविनाशी कूटस्थ मुक्त जीव)। रामानुज इसी आधार पर नित्य जीवों को जोड़कर त्रिविध वर्गीकरण करते है।

रामानुज के अनुसार मोक्ष का अर्थ जीव का ईश्वर में विलीन होकर नष्ट हो जाना नहीं है। मोक्ष में जीव का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है, लेकिन वह ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्व,विभुत्व गुणों को छोड़कर अन्य आठ दिव्य गुणों अपापविद्धता, सत्यकामत्व आदि को प्राप्त कर लेता है। इसे 'साधर्म्य' या 'सायुज्य' मुक्ति कहा जाता है, जहाँ जीव ईश्वर की शाश्वत सेवा का आनंद लेता है।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति॥[8]

अर्थात् जब द्रष्टा (जीव) उस स्वर्ण के समान तेजस्वी, सबके कर्ता, नियामक और ब्रह्म के उद्गम स्थान परमेश्वर को साक्षात् देख लेता है, तब वह विद्वान जीव अपने पुण्य और पाप दोनों को धोकर, विकारों से रहित होकर परम समता (ईश्वर के समान आनंद) को प्राप्त करता है।

अचित् - विशिष्टाद्वैत वेदांत के 'तत्वत्रय' सिद्धांत में 'अचित्' दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। 'अचित्' का शाब्दिक अर्थ है- "ज्ञान से रहित या जड़ तत्व"। आचार्य रामानुज के अनुसार अचित् एक वास्तविक, अनादि और परिवर्तनशील सत्ता है। शंकराचार्य जहाँ जगत् और उसके मूल कारण (माया) को 'अनिर्वचनीय' या मिथ्या मानते हैं , वहीं रामानुज ने अचित् को वास्तविक स्वीकार किया है। यह ईश्वर का ही एक विशेषण या शरीर है, जो जीवों के कर्म भोग और ईश्वर की लीला के लिए प्रवृत्त होता है।

अचेतनत्वं नाम ज्ञानाश्रयत्व-रहितत्वम्।
तच्च वास्तविकं, न तु कल्पितं मिथ्या वा॥[9]

अर्थात् अचेतन (अचित्) उसे कहते हैं जिसमें ज्ञान का कोई आश्रय नहीं होता। वह वास्तविक है, न कि कोई काल्पनिक या मिथ्या वस्तु।

आचार्य रामानुज ने विश्व के समस्त जड़ तत्वों (अचित्) को उनकी प्रकृति और गुणों के आधार पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया है-

1. प्राकृत या शुद्ध मिश्र- यह वह भौतिक प्रकृति है जिसमें तीन गुण हैं - सत्व, रज और तम । जगत इसी से बना है।
2. अप्राकृत या शुद्ध सत्त्व- यह एक ऐसा दिव्य जड़ तत्व है जिसमें रज और तम गुण बिल्कुल नहीं होते, केवल शुद्ध सत्व गुण होता है जिससे भगवान का परमपद (बैकुंठ धाम), उनके आभूषण, अस्त्र-शस्त्र और नित्य मुक्त,मुक्त जीवात्माओं और भगवान का शरीर भी बना होता हैं।
3. सत्त्वशून्य या काल- यह सत्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित तत्व है। इसे 'काल'कहा जाता है। यह सृष्टि, स्थिति और संहार का नियामक है और ईश्वर की लीला का साधन है।

प्रकृतिर्या मया ख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि॥[10]

अर्थात् जो व्यक्त (स्थूल) और अव्यक्त (सूक्ष्म) रूप वाली प्रकृति मेरे द्वारा कही गई है, वह प्रकृति और पुरुष

(जीव)—ये दोनों ही प्रलयकाल में परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

प्रकृति का परिणामवाद – आचार्य रामानुज सांख्य दर्शन की तरह सत्कार्यवाद और प्रकृति परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार, यह जगत प्रकृति का ही बदला हुआ रूप है। सृष्टि से पूर्व प्रकृति अति सूक्ष्म रूप में ईश्वर के भीतर रहती है, जिसे 'तमस' या 'अव्यक्त' कहते हैं। जब ईश्वर संकल्प करते हैं, तब इस मूल प्रकृति से क्रमशः महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार, मन, पंच-ज्ञानेंद्रियाँ, पंच-कर्मेंद्रियाँ और पंच-महाभूत का विकास होता है। यह संपूर्ण प्रक्रिया वास्तविक है, कोई विवर्त (भ्रम) नहीं है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥[11]

अर्थात् इस उपनिषद वाक्य में 'माया' को ही मूल प्रकृति समझना चाहिए और उस माया के स्वामी (नियंता) को महेश्वर (ईश्वर) जानना चाहिए। उस ईश्वर के ही अवयवों (अंगों) से यह संपूर्ण जगत व्याप्त है।

निष्कर्ष - आचार्य रामानुज का विशिष्टाद्वैत वेदांत दर्शन भारतीय धर्म और दार्शनिक चिंतन के इतिहास में एक युगांतरकारी मोड़ है। रामानुज ने दर्शन की शुष्कता को भक्ति की सरसता से जोड़कर एक अत्यंत व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत किया। जहाँ आदि शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' कहकर संसार को एक व्यावहारिक भ्रम या माया घोषित करता है, वहीं रामानुजाचार्य ने उपनिषदों की व्याख्या करते हुए जगत और जीव दोनों की वास्तविक सत्ता को पुनर्स्थापित किया।

रामानुज के दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उनका 'शरीर-शरीरी संबंध' और 'अपृथक्सिद्धि सिद्धांत' है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ईश्वर ही एकमात्र परम तत्व है, किंतु वह निर्गुण या शून्य नहीं है, बल्कि चित् और अचित् रूपी विशेषणों से युक्त सगुण परब्रह्म है। ईश्वर विश्व की आत्मा (शरीरी) हैं, जबकि समस्त चेतन जीव और जड़ प्रकृति उनका दिव्य शरीर हैं। इस प्रकार, उन्होंने ज्ञान और भक्ति के बीच के द्वंद्व को समाप्त कर दिया। उनके अनुसार ज्ञान का चरम उत्कर्ष ही ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति और प्रपत्ति है।

इस दार्शनिक दृष्टिकोण का सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा । जब जीव को ईश्वर का वास्तविक अंश और शरीर माना गया, तो समाज में जाति, वर्ण या लिंग के आधार पर भेदभाव का सैद्धांतिक आधार ही समाप्त हो गया। रामानुज ने प्राणिमात्र के लिए मोक्ष के द्वार खोले और 'प्रपत्ति' को सबसे सुलभ मार्ग बताय

संदर्भ सूची :

1. तैत्तिरीय उपनिषद् – 2/1
2. विष्णु पुराण – 6/5/79
3. बृहदारण्यक उपनिषद् – 3/7/22
4. भगवद्गीता – 4/7 - विभव/अवतार संदर्भ
5. छांदोग्य उपनिषद् – 6/2/1
6. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/66
7. ब्रह्मसूत्र -2/3/18 रामानुज श्रीभाष्य
8. मुण्डक उपनिषद् – 3/1/3
9. यामुनाचार्य कृत सिद्धित्रय / रामानुज सम्मत
10. विष्णु पुराण – 1/2/21
11. श्वेताश्वतर उपनिषद् – 4/10

•